International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(2): 43-45

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(2): 43-45
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 12-01-2017
Accepted: 13-02-2017

डॉ0 कमलेश कुमार सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष – राजनीति विज्ञान, के0ए0 (पी0जी0) कॉलेज, कासगंज (उ0प्र0)

Correspondence
डॉ0 कमलेश कुमार सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष – राजनीति विज्ञान, के0ए0 (पी0जी0) कॉलेज, कासगंज (उ0प्र0)

पुराणों में अहिंसा–सिद्धान्त

डॉ0 कमलेश कुमार सिंह

प्रस्तावना

''अहिंसा'' की विचारधारा अति प्राचीनकाल से भारतवर्ष में प्रवाहित होती रही है। भारतीय साहित्य में इस अहिंसा की विचारधारा को सर्वोच्च धर्म के रूप में स्वीकार किया गया है। 'अहिंसा परमो धर्मः।। यह बहुधा कहा गया है। योग दर्शन में अहिंसा को एक व्रत के रूप में प्रस्तुत किया गया है। जिसका आचरण सार्वभौम होता है अर्थात् देश, काल और समय से अवच्छिन्न नहीं होता।

''ब्रह्माचर्यमहिंसा च क्षमा शौचं तपो दमः।
सन्तोषः सत्यभास्तिक्यं व्रताग्ड़ानि विशेषतः।।''
एकेनाप्यथ हीनेन व्रतमस्य तु लुप्यते।

'अहिंसा' का अर्थ होता है, ''हिंसा का अभाव''। तथा स्थावर जंगमादि सभी प्रकार के जीवों के प्रति द्रोह, जिससे जीवों को शारीरिक या मानसिक दुःख मिलता है। 'हिंसा' कहलाती है। 'दुःख' वह है जिससे अभिहत होकर प्राणी उसके प्रतीकार के लिए यत्न करते हैं। 'येन अभिहताः प्राणिनः तदुपधाताय यतन्ते।' इसका यह अभिप्राय हुआ कि पर–पीड़ा–कारक चित्त–वृत्ति का न होना ही अहिंसा है। भारत की विभिन्न परम्पराओं में अहिंसा को पृथक्–पृथक् रूप में प्रस्तुत किया गया है। जिनमें भिन्नता होते हुए भी समानता के दर्शन होते हैं।

वैदिक परम्परा में अहिंसा का सिद्धान्त उपनिषदों से प्रारम्भ होता है, संहिताओं में भी इसकी झलक सी देखी जाती है। यजुर्वेद में तो सभी प्राणियों के प्रति मैत्रीभाव तथा विश्वशान्ति के विचारों के स्पष्ट अभिव्यक्ति मिलती है।[1] उपनिषदों के अनुसार अहिंसा एक यज्ञ है एवं इस को आत्मसंयम का एक प्रमुख साधन कहा गया है। छान्दोग्योपनिषद् के अनुसार अहिंसा ब्रह्मलोक प्राप्त करने का अर्थात् मुक्ति पाने का एक साधन है।

रामायण में भी अहिंसा का सिद्धान्त विकास की ओर अग्रसर हो रहा था। इसमें आचार को धर्म का अभिन्न अंग माना गया है तथा अहिंसा आचार के प्रधान अंगों में से एक प्रमुख अंग है।[2] महाभारत काल में भारतीय संस्कृति अपनी पूर्ण ऊँचाइयों पर थी तथा उसका बहुमुखी विकास हो चुका था। अतः महाभारत में अहिंसा का पूर्ण विवेचन हुआ है। स्पष्ट रूप से कहा गया है कि 'अहिंसा' एक पूर्ण धर्म है और हिंसा ही अधर्म है।[3]

जैन धर्म तथा बौद्ध धर्म में अहिंसा अपने चरमोत्कर्ष पर दिखलाई पड़ती है। वास्तव में इन धर्मों का मूल आधार ही अहिंसा है। जैनधर्म का तो 'अहिंसा' पर्याय माना जाता है। आधुनिक काल के हिन्दूधर्म के प्रमुख परिष्कर्ता और देश के महान् नेता गाँधी जी ने तो अहिंसा को अपने जीवनदर्शन का प्रधान स्तम्भ घोषित किया था।

'पुराण' भारतीय संस्कृति का मेरुदण्ड माने जाते हैं, तथा जिनके अध्ययन से भारतीय संस्कृति के स्वरूप का सही ज्ञान मिलता है। पुराण ग्रन्थ हिन्दू–धर्म के मुख्य स्रोत हैं, तथा सभी भारतीय सिद्धान्तों के विश्वकोष कहे जाते हैं। वे पुराण भी 'अहिंसा' के सिद्धान्त से ओतप्रोत है। समस्त पुराण साहित्य तपस्या एवं तीर्थों पर आधारित है। इन दोनों में ही हिंसा का कोई स्थान नहीं होता है। पुराणों ने यज्ञों में भी पशु–हत्या आदि का निषेध किया है।

पुराणों ने अहिंसा–सिद्धान्त का प्रचार एवं प्रसार किया। इसके क्षेत्र को अत्यन्त व्यापक बनाया। पुराण इस सिद्धान्त को केवल नकारात्मक रूप में ही नहीं लेते अर्थात् 'हिंसा न करना' ही अहिंसा है, अपितु उनके अनुसार किसी भी चर–अचर, जड़–चेतन, जीव, जन्तु, मनुष्य, प्रकृति आदि किसी को भी परोक्ष रूप से भी कष्ट न पहुंचाना ही अहिंसा होती है। पुराणों में अहिंसा को धर्म तथा हिंसा को पाप की श्रेणी में रखा है– 'परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्'।

अतः पुराणों के अनुसार किसी व्यक्ति को प्रत्यक्ष रूप से कष्ट देना तो हिंसा अर्थात् पापकर्म से हमारा मन, वचन, कर्म से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध होना भी हिंसा ही होता है। विभिन्न पुराणों में अहिंसा–सिद्धान्त को विस्तृत रूप में प्रस्तुत किया गया है।

1. वायु पुराणः वायुपुराण अत्यन्त प्राचीन पुराण है। इस पुराण में अहिंसा के सिद्धान्त को प्रतिपादित करते हुए कहा गया है कि मन, वाणी और कर्म से सभी जीवों के प्रति अहिंसा का पालन करना चाहिए।[4] अन्य शास्त्रों में उस हिंसा को क्षम्य माना गया है। जिसमें हिंसक का उद्देश्य हिंसा करना न हो, परन्तु वायुपुराण में उस व्यक्ति को भी महादोषी माना गया है जो अनजाने में ही हिंसा कर बैठता है। तथा इस दोष से मुक्ति पाने के लिए चान्द्रायण आदि कठोर व्रतों का पालन करना बतलाया गया है।[5]

2. विष्णु पुराणः विष्णु–पुराण वैष्णव–दर्शन का मूल आश्रय–ग्रन्थ है। इस पुराण में हिंसा को सभी पातकों की जड़ तथा अहिंसा को विष्णु को सन्तुष्ट करने यानी मुक्ति पाने का मुख्य साधन कहा गया है। इस पुराण के अनुसार यज्ञ में अन्न का प्रयोग ही धर्मोचित है। अन्य पशु–मांस इत्यादि का प्रयोग नहीं होना चाहिए। इस पुराण के अनुसार विष्णु का उपासक किसी प्रकार की हिंसा नहीं करता, वह न तो किसी की हत्या करता है और न बलपूर्वक पराई वस्तु का अपहरण ही करता है।[6] तथा भगवान केवल ऐसे ही लोगों से प्रसन्न होते हैं जो किसी भी प्राणी को कष्ट नहीं देते और न किसी की हत्या करते हैं।[7]

इस पुराण में विष्णु की सर्वव्यापकता दिखलाकर यह कहा गया है कि हिंसा करने वाला वस्तुतः इन्हीं की हिंसा करता है। अतः परहिंसा से अपने को पृथक रखने वाले से ही विष्णु सन्तुष्ट रहते हैं।

अग्निपुराण में समस्त ज्ञान–विज्ञान का परिचय मिलता है। यदि इसे भारतीय विधाओं का विश्वकोष कहें तो अत्युक्ति नहीं होगी। इसमें अहिंसा को भुक्ति एवं मुक्ति दोनों को ही देने वाला कहा गया है।[8] तथा शौच, संतोष, तपस्या, स्वाव्याय ईश्वर–पूजन, प्राणियों को कष्ट न देना आदि अहिंसा को एक प्रमुख स्थान प्रदान किया गया है।

मत्स्यपुराणः व्रतों का वर्णन मत्स्यपुराण की महती विशेषता है। इस पुराण में 'अहिंसा' को भी 'मुनिव्रतों' में से एक मानकर[9] इसके स्थान को अत्यन्त उत्कृष्टता पर पहुंचा दिया है। मत्स्यपुराण के अनुसार जितना पुण्य चार वेदों के अध्ययन अथवा सत्य बोलने से अर्जित होता है उससे कहीं अधिक पुण्य की प्राप्ति अहिंसा व्रत के पालन से होती है।[10] इस पुराण में यज्ञ में पशुहिंसा को अधर्म की श्रेणी में रखा गया है। तथा तप द्वारा मुक्ति पाना ही अधिक श्रेयस्कर समझ गया है।[11]

ब्रह्मपुराणः ब्रह्मपुराण में अहिंसा–व्रत का प्रतिपादन तथा इसका महत्व शिव–पार्वती संवाद के रूप में दर्शाया गया है। कौन–कौन लोग मुक्ति पाने योग्य हैं, पार्वती के इस प्रश्न के उत्तर में शिव अन्य आचरणों का पालन करने वाले मनुष्यों के साथ–साथ मन, वचन और कर्म से अहिंसा व्रत का पालन करने वाले मनुष्य को भी मुक्ति का पात्र बतलाते हैं। उनके अनुसार जो जीव हिंसा से रहित, शीलवान तथा दयालु हैं और जिनकी दृष्टि में शत्रु तथा मित्र समान हैं, वे कर्म–बन्धन से मुक्त हो जाते हैं।[12]

नारदपुराणः विष्णु–भक्ति के प्रतिपादक नारद–पुराण में महर्षि–भगु के द्वारा राजा भगीरथ को दिया गया उपदेश अहिंसा सम्बन्धी विचारों को काफी दृढ़ बनाता है। वे कहते हैं कि जिस प्रकार धर्म का विरोध न हो, उसी प्रकार धर्म–परायण व्यक्तियों के कर्म होने चाहिए। सज्जन पुरुषों के अनुसार वे ही सत्य वचन हैं जिनसे किसी का विरोध न हो। जिनसे किसी भी प्राणी को कष्ट न पहुंचे। यह अहिंसा का रूप है इसके द्वारा सभी की मनोकामनाएं पूर्ण होती हैं।[13]

अन्य स्थल पर विष्णु की पूजा के सम्बन्ध में कहा गया है कि भगवान की पूजा करते समय भी किसी को मन, वाणी, कर्म से पीड़ा नहीं पहुंचानी चाहिए। अर्थात् केवल ध्यान लगाना, आरती करना, पुष्प आदि चढ़ाना ही पूजा नहीं है, अपितु किसी को भी परोक्ष रूप से कष्ट न देना भी पूजा के अन्तर्गत ही आता है।[14] अहिंसा को किसी भी प्राणी को कष्ट न पहुंचाने तथा योग सिद्धि दिलाने वाली कहा गया है।[15]

शिवपुराणः शिवपुराण में अहिंसा को भिन्न प्रकार से प्रस्तुत किया गया है। इस पुराण में हिंसा को पापकर्म माना गया है एवं अहिंसा पुण्यकर्म है। हिंसा का वर्णन करते हुए बतलाया गया है कि अभक्ष्य का भक्षर्ण करना हिंसा है, दूसरों का धन–हरण करना, माता–पिता को त्याग देना आदि पाप–कर्म हैं।[16] जो व्यक्ति इन हिंसा आदि पापकर्मों में रत है, वह विभिन्न प्रकार की यातनाएं पाता है एवं नरकगामी होता है।[17] इस प्रकार इस पुराण में हिंसा की निकृष्टता दिखलाकर, अहिंसा की अवधारणा को और अधिक सुदृढ़ किया गया है।

वामन पुराणः इस पुराण में पंचरात्र राजा की कथा द्वारा अहिंसा–सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। यह कथा इंगित करती है कि परवर्ती विचारकों ने प्राचीन पूजा के उस रूप का, जिसका सम्बन्ध पशुओं के वध से था परित्याग कर दिया और उसे निंदनीय घोषित किया।[18]

बृहद्धर्मपुराणः बृहद्धर्मपुराण में 'अहिंसा' को अत्यन्त विस्तृत रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस पुराण के अनुसार श्रद्धा, अतिथि–सेवा, सबसे आत्मीयता, आत्मशुद्धि आदि सभी 'अहिंसा की विभिन्न विधियां है।[19] इसमें 'अहिंसा' के क्षेत्र को सीमित न रखकर व्यापक रूप में प्रस्तुत किया गया है।

कूर्म्मपुराणः कूर्म्मपुराण में तो अहिंसा[20] व्रत को केवल ब्राह्मणों, ज्ञानियों तक ही सीमित न रखकर चारों वर्णों के लिए आवश्यक बतलाकर इस की व्यापकता को और बढ़ा दिया है। इसके अनुसार क्षमा, दम, दया, दान, अलोभ, आर्जव, अनसूया, सत्य, सन्तोष, श्रद्धा आदि ब्राह्मणों की विषेषताऐं हैं। किन्तु अहिंसा, प्रियवचन, अपिषुनता आदि चारों वर्णों के लिए आवश्यक होते हैं।[21]

भागवत पुराणः भागवत पुराण में भी अहिंसा का वर्णन प्राप्त होता है। सनत्कुमार ने अहिंसा को गुरु और शास्त्रों के वचनों में विश्वास करना, भागवत–धर्मों का आचरण करना, तत्वजिज्ञासा तथा ज्ञानयोग की निष्ठा आदि ब्रह्मप्राप्ति के अठारह साधनों में से एक कहा है।[22] एक प्रसंग में नारद ने धर्म के तीस लक्षणों में अहिंसा का प्रमुख स्थान बतलाया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पुराणों में अहिंसा–सिद्धान्त पूर्ण–विकसित एवं समृद्ध है। पुराणों ने अहिंसा को धर्म की श्रेणी तथा हिंसा को अधर्म की श्रेणी में प्रतिष्ठित किया है। यज्ञों में भी पशु–हिंसा आदि का स्थान न देकर, अन्न आदि के प्रयोग पर बल देकर, अहिंसा–सिद्धान्त को सुदृढ़ बनाया है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. यजुर्वेद 36.17
2. वाल्मीकि रामायण 2/33/12
3. महाभारत शान्तिपर्व 272/20
4. वायुपुराण पूर्वार्द्ध 18
5. वायुपुराण पूर्वार्द्ध 18/13
6. विष्णुपुराण 3/8/10
7. विष्णुपुराण 3/8/14

8. अग्निपुराण 372 / 2—3
9. मत्स्यपुराण 60 / 15
10. मत्स्यपुराण 105 / 48
11. मत्स्यपुराण 142 / 12, 13, 21, 29, 30
12. ब्रह्मपुराण 224 / 7—8
13. नारदपुराण 16 / 24—26
14. नारदपुराण 33 / 34
15. नारदपुराण 33 / 76
16. शिवपुराण 5 / 5
17. शिवपुराण 6 / 21
18. वामनपुराण 57 / 86—125
19. वृहदधर्म पुराण 2 / 11—12
20. कूर्म्म पुराण 2 / 65—67
21. भागवत पुराण 4 / 22 / 22—25
22. भागवत पुराण 7 / 11 / 8—9